Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

भारतीय कला एवं संस्कृति

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSPM13

दृष्टि The Vision

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

भारतीय कला एवं संस्कृति

दृष्टि The Vision

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 8750187501, 011-47532596
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiias.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिए निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP विषय सूची (Contents)

1.	भारतीय संस्कृति और उसका प्रसार	5-27
2.	भारतीय स्थापत्य	28-48
3.	भारतीय मूर्तिकला	49-74
4.	नृत्य	75-92
5.	संगीत	93-119
6.	भारतीय चित्रकला	120-139
7.	रंगमंच, नाटक और सिनेमा	140-139
8.	पारंपरिक भारतीय वस्त्र एवं भोजन	140-157
9.	युद्धकला और परंपरागत खेल	158-168
10.	प्रमुख भारतीय भाषाएँ	169-177
11.	भारत की प्रमुख लिपियाँ	178-195
12.	धर्म	196-200
13.	दार्शनिक प्रवृत्तियाँ	201-242
14.	प्रमुख वास्तुविद् एवं उपयोगी शब्दावली	243-254
15.	भारत के सांस्कृतिक संस्थान	255-264
16.	सम्मान एवं पुरस्कार	265-272

अध्याय
1

भारतीय संस्कृति और उसका प्रसार
(Indian Culture and its Expansion)

1.1 संस्कृति : एक परिचय 1.2 भारतीय संस्कृति का प्रसार

1.1 संस्कृति : एक परिचय *(Culture An Introduction)*

संस्कृति क्या है?

संस्कृति समाज और जीवन के विकास के मूल्यों की सम्यक् संरचना है। यह समाज में अंतर्निहित गुणों और उच्चतम आदर्शों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने-विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है।

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से है। संस्कृति किसी समाज में पाए जाने वाले, उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाज़ों, चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन और आचरण के साथ-साथ उनके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है। अंग्रेज़ी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' (Culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- विकसित करना या परिष्कृत करना। संक्षेप में 'संस्कृति' अपनी बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थितियों को निरंतर सुधारती और उन्नत करती रहती है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और वह आविष्कार, जिससे मनुष्य के जीवन स्तर में बदलाव होता है और वह विचारों से पहले की अपेक्षा ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, संस्कृति का ही अंग है। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसमें हम सकारात्मक दिशा में सोचते और कार्य करते हैं।

संस्कृति के भेद

1. भौतिक
2. अभौतिक

1. भौतिक संस्कृति के अंतर्गत प्रौद्योगिकी, कला के विभिन्न रूप, वास्तुकला, भौतिक वस्तुएँ और घरेलू प्रयोग के सामान, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य, युद्ध एवं अन्य सामाजिक कार्यकलाप आदि शामिल हैं।
2. अभौतिक संस्कृति से साहित्यिक, दार्शनिक एवं बौद्धिक परंपराओं, विश्वासों, मिथकों, दंत कथाओं तथा आदर्शों, भावनाओं और वाचिक परंपराओं का बोध होता है।

संस्कृति के भाग

व्यापक अर्थों में संस्कृति एक संश्लिष्ट समुच्चय है, जिसमें सभ्यता के विविध आयाम दिखते हैं।

जवाहरलाल नेहरू *के अनुसार,* "संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती, परंतु संस्कृति के लक्षण देखे जा सकते हैं। हर जाति अपनी संस्कृति को विशिष्ट मानती है। संस्कृति एक अनवरत मूल्यधारा है। यह जातियों के आत्मबोध से शुरू होती है। इस

के संत पॉल और संत एंथोनी), स्मारक पूजा तथा रुद्राक्ष माला का प्रयोग। भारतीय लोक-कथाएँ तथा आख्यायिकाएँ पश्चिम की ओर गईं और भिन्न-भिन्न रूपों में उन्होंने यूरोपीय साहित्य में स्थान पाया। चतुरंगी सेना और शतरंज का खेल भी इस युग के अंत में फारसियों में लोकप्रिय होने लगा। इस प्रकार, भारत-रोमन संबंधों से परस्पर दोनों पक्ष लाभान्वित हुए।

भारत-अरब संबंध

स्थल मार्ग और जल मार्ग के द्वारा पश्चिम एशिया से भारत का संपर्क प्राचीन काल से चला आ रहा है। हड़प्पा सभ्यता का संबंध मेसोपोटामिया, बहरीन, कुवैत के क्षेत्रों के साथ-साथ फारस (ईरान) से भी था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में फारस के शासकों, जैसे– सायरस-I, डेरियस-I ने भारत पर आक्रमण भी किये थे। इस बात के प्रमाण हेरोडोटस के 'हिस्टोरिका' तथा पर्सीपोलिस अभिलेख में दर्ज़ हैं। ईरानी आक्रमण का ही परिणाम है कि भारत के उत्तर-पश्चिम में खरोष्ठी लिपि का विकास हुआ तथा अरमाइक लिपि (सीरिया की) से भी भारतीय परिचित हुए। इन दो सांस्कृतिक क्षेत्रों के बीच संबंध, पश्चिम एशिया में इस्लामी सभ्यता के उदय और प्रसार के साथ और गहरे हुए। इन संबंधों की चर्चा अरब तथा अन्य व्यापारी यात्रियों, जैसे– सुलेमान, अल-मसूदी, इब्नहौवुल, अल-इदरिसी ने अपने यात्रा वृत्तांतों में की है। बहरहाल, आठवीं सदी या इससे पहले भी सक्रिय सांस्कृतिक मेल-जोल के प्रमाण मिले हैं।

खगोल विज्ञान क्षेत्र के दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत' जिसे अरब में 'सिंधिन' कहा गया तथा 'खंड खाद्यक' (अरब में अल-अरकंद नाम से प्रसिद्ध) सिंध से बगदाद पहुँचे, जिनका अनुवाद 'अल-फज़ारी' ने किया। बाद के समय में आर्यभट्ट और वराहमिहिर कृत खगोल विज्ञान के ग्रंथों का भी अरब जगत में अध्ययन हुआ और इन्हें अरब के वैज्ञानिक साहित्य में शामिल कर लिया गया।

अरब सभ्यता को भारत का एक अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान गणित के क्षेत्र में था। अरब के विद्वानों ने गणित को 'हिंदिसा' कहकर भारत के प्रति अपना ऋण स्वीकार किया है। अरबों ने जल्द जान लिया कि 'शून्य' की अवधारणा से लैस भारतीय दाशमिक प्रणाली अत्यंत क्रांतिकारी है। 10वीं से 13वीं सदी के अनेक अरबी स्रोतों से पता चलता है कि चिकित्सा और औषधि विज्ञान के बहुत से भारतीय ग्रंथों का खलीफा हारून-अल-रशीद के निर्देश पर अरबी में अनुवाद हुआ। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने अरब को काफी समृद्ध बनाया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. सभ्यता की नवीनतम उपलब्धियाँ संस्कृति के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करती है।
   2. सभ्यता एवं संस्कृति की अंत:क्रिया अनवरत रूप में चलती रहती है।
   3. संस्कृति सभ्यता की उच्च अवस्था है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 1 और 2 (d) 1, 2 और 3
2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. नैतिक मूल्यों एवं मानवीय संबंधों के व्यवहार को संस्कृति में शामिल किया जाता है।
   2. सभ्यता और संस्कृति का संबंध परस्पर पूरक नहीं होता है।
   3. संस्कृति सामाजिक अंत:क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 2
   (c) केवल 2 और 3 (d) केवल 1 और 3
3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. संस्कृति का अस्तित्व निर्गमन की निरंतरता पर निर्भर होता है।
   2. सामाजिक व्यवहार एक पीढ़ी-से-दूसरी पीढ़ी में निर्गमित होते हैं।
   3. संस्कृति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित की जाती है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 1 और 2
   (c) केवल 1 और 3
   (d) 1, 2 और 3

4. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?
   (a) संस्कृति मनुष्य के सभी समाजों की एक सार्वभौमिक विशेषता नहीं है।
   (b) व्यक्ति उच्च बुद्धिमत्ता के आधार पर संस्कृति को बिना सीखे प्राप्त कर सकता है।
   (c) मनुष्यों का व्यवहार उस संस्कृति से निर्धारित होता है, जिससे वे संबंधित होते हैं।
   (d) पशुओं की अपने-अपने समाजों में संस्कृति होती है।

5. भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं के संदर्भ में विचार कीजिये:
   1. प्राचीनता
   2. निरंतरता
   3. अनेकता में एकता
   4. राष्ट्रीयता

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से विकल्प सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 1, 2 और 3
   (d) उपर्युक्त सभी

6. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. भारतीय संस्कृति धर्म-आधारित है।
   2. धर्म और संस्कृति में कभी टकराव नहीं होता।
   3. सांस्कृतिक इतिहास में धर्म एक स्तरमात्र है।
   4. धर्मविहीन संस्कृति, संस्कृति नहीं, बल्कि प्रतिक्रियावादी विकृति होती है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 4
   (c) केवल 1 और 2
   (d) केवल 1 और 3

7. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. चंपा क्षेत्र पर राजनीतिक रूप से सर्वप्रथम प्रभाव जमाने वाला, भारतीय मूल का व्यक्ति 'श्रीमार' था।
   2. दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में सर्वप्रथम कौंडिण्य नामक भारतीय ब्राह्मण का प्रवेश हुआ।
   3. बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाला प्रथम देश श्रीलंका था।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 2 और 3
   (d) 1, 2 और 3

8. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. एशियाई देशों में भारत के सांस्कृतिक प्रसार का महत्त्वपूर्ण कारण सिर्फ धर्म था।
   2. रोमन सभ्यता के साथ भारतीय संपर्क में भी धर्म ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
   3. अरब जगत के साथ भारतीय संबंध का प्रमुख आधार अश्व व्यापार था।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 3
   (c) केवल 1 और 3
   (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

9. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. बंगाल व उत्तर-पूर्व क्षेत्र को कामरूप-कपाट से संबोधित किया जाता था।
   2. बर्मा के पेगू और मोलमेन को 'सुवर्ण द्वीप' कहा जाता था।
   3. जावा (इंडोनेशिया) को प्राचीन काल में 'सुवर्ण भूमि' कहा जाता था।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2 और 3
   (c) 1, 2 और 3
   (d) उपर्युक्त में से कोई नहीं

10. भारत ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ अपने आरंभिक सांस्कृतिक संपर्क तथा व्यापारिक संबंध बंगाल की खाड़ी के पार बना रखे थे। निम्नलिखित में से कौन-सी बंगाल की खाड़ी के इस उत्कृष्ट आरंभिक समुद्री इतिहास की सबसे विश्वसनीय व्याख्या/व्याख्याएँ हो सकती है/हैं?
    (a) प्राचीन काल तथा मध्यकाल में भारत के पास दूसरों की तुलना में अति उत्तम पोत निर्माण तकनीकी उपलब्ध थी।
    (b) इस उद्देश्य के लिये दक्षिण भारतीय शासकों ने व्यापारियों, ब्रह्म पुजारियों और बौद्ध भिक्षुओं को सदा संरक्षण दिया।
    (c) बंगाल की खाड़ी में चलने वाली मानसूनी हवाओं ने समुद्री यात्राओं को सुगम बना दिया था।
    (d) इस संबंध में (a) व (b) दोनों विश्वसनीय व्याख्याएँ हैं।

11. निम्नलिखित में से कौन-सा विकल्प गलत है?
    (a) चंपा राज्य का शासक शैव मतावलंबी था।
    (b) भारत ने इंडोनेशिया से पान की खेती सीखी।
    (c) मध्य एशिया में बौद्ध धर्म की प्रमुखता लगभग 7वीं सदी तक रही।
    (d) इंडोनेशिया के द्वीप बाली में आज भी बौद्ध धर्म ही प्रधान धर्म है।

12. कौन-से वृहद् मंदिर की प्रारंभिक अभिकल्पना तथा निर्माण सूर्यवर्मन द्वितीय के राज्यकाल के दौरान हुए? **(UPSC–2006)**
(a) श्री मरियम्मन मंदिर (b) अंकोरवाट
(c) बाटु केब्ज मंदिर (d) कामाख्या मंदिर

13. रेशम मार्ग से संबंधित निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये–
1. यह मुख्यतया ज़मीनी रास्ता था, जो चीन से रोम तक जाता था।
2. इस मार्ग से केवल रेशम नहीं, बल्कि इससे जुड़े सभी लोग अपने-अपने उत्पादों का व्यापार करते थे।
3. मिंग राजवंश के शासनकाल में रेशम मार्ग विकसित हुआ।
4. बौद्ध धर्म को विश्वजनिन बनाने में रेशम मार्ग का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
(a) केवल 3 (b) केवल 1, 2 और 4
(c) केवल 2, 3 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4

14. भारतीय संस्कृति के बाह्य देशों में प्रसार के प्रमुख कारण थे–
1. भारत को सामरिक-भौगोलिक विशिष्टता प्राप्त थी।
2. भारतीयों में धर्म प्रचार का अति उत्साह था।
3. व्यापारिक वृत्ति ने भारतीय संस्कृति को अन्य देशों में पहुँचाया।
4. औपनिवेशिक प्रसार की अत्यधिक लालसा।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन असत्य है/हैं?
(a) केवल 1 और 4 (b) केवल 2 और 4
(c) केवल 3 और 4 (d) केवल 4

उत्तरमाला

1. (d) 2. (d) 3. (d) 4. (c) 5. (c) 6. (d) 7. (d) 8. (b) 9. (a) 10. (c)
11. (d) 12. (a) 13. (b) 14. (b)

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. क्या हमारे राष्ट्र में सर्वत्र लघु भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में उदाहरणों के साथ सविस्तार स्पष्ट कीजिये। **UPSC (Mains) 2019**
2. अंग्रेज किस कारण भारत से कराराबद्ध श्रमिक अन्य उपनिवेशों में ले गए थे? क्या वे यहाँ पर अपनी सांस्कृतिक पहचान को परिरक्षित रखने में सकल रहे है। **UPSC (Mains) 2018**
3. "भारत की प्राचीन सभ्यता, मिस्र, मेसोपोटामिया और ग्रीस की सभ्यताओं से, इस बात में भिन्न है कि भारतीय उपमहाद्वीप की परंपराएँ आज तक भंग हुए बिना परिरक्षित की गई हैं।" टिप्पणी कीजिये। **UPSC (Mains) 2015**
4. धर्म और संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध है। आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।
5. सांस्कृतिक विविधता का क्या अर्थ है? भारत को एक अत्यंत विविधतापूर्ण देश क्यों माना जाता है? व्याख्या करें।
6. सांस्कृतिक विविधता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का वर्णन करते हुए बताएँ कि क्या अति राष्ट्रवाद सांस्कृतिक विविधता को नष्ट करता है?
7. प्राचीन काल में विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के क्या कारण थे तथा इस प्रसार का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा? चर्चा करें।
8. दक्षिण-पूर्व, मध्य और पूर्वी एशिया के देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंधों पर प्रकाश डालें।
9. मध्य एशिया के संपर्क से भारत की राजनीतिक, सामाजिक और विज्ञान-प्रौद्योगिकीय पद्धति पर क्या प्रभाव पड़ा?

अध्याय
2

भारतीय स्थापत्य
(Indian Architecture)

2.1 सैंधव वास्तुकला
2.2 बौद्ध वास्तुकला
2.3 मंदिर वास्तुकला
2.4 ओडिशा का स्थापत्य
2.5 गुजरात का स्थापत्य
2.6 बुंदेलखंड का स्थापत्य
2.7 होयसल शासकों का स्थापत्य
2.8 पालकालीन स्थापत्य
2.9 चालुक्यकालीन एवं राष्ट्रकूटकालीन स्थापत्य
2.10 पल्लवकालीन स्थापत्य
2.11 चोलकालीन स्थापत्य
2.12 इंडो-इस्लामिक वास्तुकला
2.13 विजयनगर स्थापत्य
2.14 मुगलकालीन स्थापत्य
2.15 आधुनिक वास्तुकला

भारतीय वास्तुकला की विशेषताओं को निम्नलिखित कालों में बाँटकर देखा जा सकता है:

2.1 सैंधव वास्तुकला *(Indus Architecture)*

- सैंधव कला उपयोगितामूलक थी। सिंधु सभ्यता की सबसे प्रभावशाली विशेषता उसकी नगर निर्माण योजना एवं जल-मल निकास प्रणाली थी।
- सिंधु सभ्यता की नगर योजना में दुर्ग योजना, स्नानागार, अन्नागार गोदीवाड़ा, वाणिज्यिक परिसर आदि महत्त्वपूर्ण हैं।
- हड़प्पा सभ्यता के समस्त नगर आयताकार खंड में विभाजित थे जहाँ सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। इसे ग्रिड प्लानिंग कहा जाता है।
- हड़प्पा सभ्यता के नगरीय क्षेत्र के दो हिस्से थे– पश्चिमी टीला (Upper town) और पूर्वी टीला (Lower town)।
- पश्चिमी टीला पूर्वी टीला की अपेक्षा ज़्यादा ऊँचाई पर बसा था तथा यह दुर्गीकृत (Fortified) होता था।
- हड़प्पा काल में भवनों में पक्की और निश्चित आकार की ईंटों के प्रयोग के अलावा लकड़ी और पत्थर का भी प्रयोग होता था।
- बरामदा घर के बीचों-बीच बनाया जाता था और मुख्य द्वार हमेशा घर के पीछे खुलता था।
- घर के गंदे पानी की निकासी के लिये ढकी हुई नालियाँ बनाकर इन्हें मुख्य नाले से जोड़ दिया गया था।
- जल-आपूर्ति व्यवस्था का साक्ष्य 'धौलावीरा' से मिला है जहाँ वर्षा जल को शुद्ध कर उसकी आपूर्ति की जाती थी।
- हड़प्पा सभ्यता में दोमंज़िला भवन हैं, सीढ़ियाँ हैं, पक्की-कच्ची ईंटों का इस्तेमाल है किंतु गोलाकार स्तंभ और घर में खिड़की का चलन नहीं था।
- हड़प्पा सभ्यता के नगरों में कहीं भी मंदिर का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला।
- हड़प्पा से प्राप्त विशाल अन्नागार, मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार (11.88 × 7.01 × 2.43 मीटर), अन्नागार व सभा भवन परिसर तथा लोथल (गुजरात) से प्राप्त व्यावसायिक क्षेत्र परिसर और विशालतम गोदीवाड़ा हड़प्पा सभ्यता की नगर निर्माण योजना के उत्कृष्ट नमूने हैं।
- हड़प्पा सभ्यता (2750-1700 B.C.) में स्थापत्य/वास्तुकला ने जो ऊँचाई प्राप्त की थी वह वैदिक काल (1500-600 B.C.) तक आते-आते समाप्त हो चुकी थी। अत: वैदिक काल स्थापत्य कला की दृष्टि से ह्रास का काल था।

अध्याय
3

भारतीय मूर्तिकला (Indian Sculpture)

3.1 भारतीय प्रतिमाओं में अंकित मुद्राएँ
3.2 मुद्राओं के प्रकार
3.3 सिंधु मूर्तिकला
3.4 मौर्य मूर्तिकला
3.5 जैन मूर्तियाँ
3.6 बुद्ध की मूर्तियाँ
3.7 ब्राह्मण धर्म की मूर्तियाँ
3.8 चालुक्य मूर्तिकला
3.9 राष्ट्रकूट मूर्तिकला
3.10 पल्लवकालीन मूर्तिकला
3.11 ओडिशा (कलिंग) की मूर्तिकला
3.12 बंगाल की मूर्तिकला
3.13 बुंदेलखंड की मूर्तिकला
3.14 राजस्थान-गुजरात की मूर्तिकला
3.15 धातु मूर्तिकला
3.16 मूर्तिकला में आधुनिकता

3.1 भारतीय प्रतिमाओं में अंकित मुद्राएँ *(Mudras in Indian Sculpture)*

धर्म, नृत्य और तंत्र के प्रभाव के कारण भारतीय मूर्तिकला में कुछ विशिष्ट नियम विकसित हुए। इन नियमों के अनुसार ही लेटी, बैठी, और खड़ी अवस्था में प्रतिमाओं का निर्माण होता है। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

लेटी हुई मूर्तियाँ- लेटी हुई मूर्तियों को 'शयन' कहा गया है। इस स्थिति में प्राय: शेषशायी विष्णु, बुद्ध का परिनिर्वाण, यशोदा और कृष्ण आदि की मूर्तियाँ बनाई गई हैं। इस प्रकार का मूर्तिशिल्प कम देखने को मिलता है।

बैठी हुई मूर्तियाँ- बैठी मूर्तियों को 'आसन' कहा गया है। इसे प्राय: निम्नलिखित प्रकार विभाजित किया गया है-

1. **पद्मासन:** इस आसन में मूर्ति को पालथी लगाए हुए दर्शाया जाता है। इसमें मूर्ति के दोनों तलवे ऊपर की ओर दिखाई देते हैं।
2. **अर्द्धपद्मासन:** इस प्रकार के आसन में मूर्ति पालथी लगाए हुए व एक पैर का तलवा ऊपर की ओर दिखाया जाता है।
3. **ललितासन:** इसमें एक पैर पालथी की स्थिति में होता है जबकि दूसरे पैर का घुटना मुड़ा हुआ ऊपरी आसन पर रखा जाता है तथा बायीं हथेली पर शरीर का बोझ होता है।
4. **मैत्रेयासन:** इसमें मूर्ति को कुर्सी या ऊँचाई पर बैठे तथा दोनों पैर एक समान रूप से नीचे लटके हुए बनाए जाते हैं।
5. **विश्रामासन:** इसमें मूर्ति को कुर्सी पर बैठाकर उसका एक पैर लटकाया हुआ बनाया जाता है जबकि उसका दूसरा पैर हाथ से पकड़ा हुआ होता है।

खड़ी मूर्तियाँ- इस प्रकार की मूर्तियों को 'स्थान' कहा गया है। खड़ी हुई मूर्तियों को निम्नलिखित अवस्थाओं में बनाया जाता है-

1. **भद्रासन:** इस स्थिति में मूर्ति को पैर खोलकर सीधे खड़ा करके बनाया जाता है।
2. **समभंग:** इस प्रकार की मुद्रा में मूर्ति को बिल्कुल सीधा खड़ा करके इस प्रकार बनाया जाता है कि मूर्ति के शरीर में कोई भी भंग नहीं हो। मूर्ति के हाथ-पैर सीधे व शरीर के दोनों हिस्सों का पूर्णतया समान अनुपात होता है।
3. **अभंग:** इस प्रकार की मुद्रा में मूर्ति के शरीर की स्थिति समभंग ही होती है लेकिन मूर्ति का एक घुटना आगे की ओर मुड़ा हुआ होता है।
4. **त्रिभंग:** इस प्रकार की मुद्रा में शरीर के तीन अंगों को तीन दिशाओं में बनाया जाता है। पहला अंग सिर एक दिशा में, वक्ष से कटि तक का भाग दूसरी दिशा में तथा कमर से नीचे का भाग अन्य दिशा में बनाया जाता है।
5. **अतिभंग:** इस प्रकार की मुद्रा में मूर्ति के कई प्रकार के अंग बनाए जाते हैं। शिव का तांडव नृत्य करते हुए बनी मूर्तियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

अध्याय
4

नृत्य
(Dance)

4.1 शास्त्रीय नृत्य	4.3 भारत के विभिन्न राज्यों में प्रचलित लोकनृत्य
4.2 लोकनृत्य	4.4 प्रमुख आधुनिक नृत्य

नृत्य एक प्रकार का सशक्त आवेग है। मनुष्य जीवन के दोनों पक्षों-सुख और दुख में नृत्य हृदय को व्यक्त करने का अचूक माध्यम है। लेकिन नृत्य कला एक ऐसा आवेग है, जिसे कुशल कलाकारों के द्वारा ऐसी क्रिया में बदल दिया जाता है, जो गहन रूप से अभिव्यक्तिपूर्ण होती है और दर्शकों को आनन्दित करती है। परिभाषा के तौर पर देखें तो अंग-प्रत्यंग एवं मनोभाव के साथ की गई नियंत्रित यति-गति को नृत्य कहा जाता है। नृत्य में करण, अंगहार, विभाव, भाव, अनुभाव और रसों की अभिव्यक्ति की जाती है। नृत्य के दो प्रकार हैं-

- नाट्य
- अनाट्य

मनुष्य और देवों के अनुकरण को नाट्य कहा जाता है और अनुकरण से रहित नृत्य को अनाट्य कहा जाता है।

शारीरिक गति या संचालन, नृत्य या तालबद्ध गति मनुष्य की प्राचीनतम अभिव्यक्तियों में से एक है। सभी समाजों में किसी न किसी रूप में नृत्य विद्यमान है। प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से लेकर आधुनिक कला मर्मज्ञों, सभी ने गति और भावनाओं के प्रदर्शन को अपनी कलाओं में बाँधने का प्रयास किया है।

4.1 शास्त्रीय नृत्य *(Classical Dance)*

शास्त्रीय नृत्य में नर्तक अपनी भंगिमाओं के जरिये एक कथा को नृत्य के माध्यम से मंचन कर प्रस्तुत करता है। कुछ शास्त्रीय नृत्यों में जैसे कथकली, कुचिपुड़ी में लोकप्रिय हिंदू पौराणिक कथाओं का अभिनय होता है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के भावापूर्ण नर्तन हेतु भंगिमाओं का जटिल भंडार होता है। शरीर के प्रत्येक अंग के लिये निश्चित भंगिमाओं का विधान किया गया है। इन अंगों में आँखें व हाथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सिर के लिये 13, भौंहों और ठोड़ी के लिये 7-7, नाक और गालों के लिये 6-6, गर्दन के लिये 9, वक्ष के लिये 5 व आँखों के लिये 36, पैरों व इसके निचले अंगों के लिये 32 (जिनमें से 16 भूमि और 16 वायु के लिये निर्धारित हैं) भंगिमाओं का विधान है। इसी प्रकार एक हाथ की 24 मुद्राएँ और दोनों हाथों की 13 मुद्राएँ, एक हस्त मुद्रा के एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न 30 अर्थ हो सकते हैं। जैसे एक हाथ की पताका मुद्रा, जिसमें सभी अंगुलियों को आगे बढ़ाकर, मुड़े हुए अंगूठे के साथ मिलाकर, गर्मी, वर्षा, भीड़, रात्रि, वन, घोड़ा या पक्षियों के उड़ने की भंगिमा को दिखाया जा सकता है। पताका मुद्रा में ही तीसरी अंगुली मोड़ने का अर्थ मुकुट, वृक्ष विवाह, अग्नि द्वार या राजा भी हो सकता है। दोनों हाथों का उपयोग कर, अंगुलियों को जोड़कर मधुमक्खी का छत्ता, जम्हाई या शंख दिखाया जा सकता है। इन अलग-अलग अर्थों के लिये हाथ की स्थिति या क्रिया भिन्न होगी। किसी एकल नृत्य नाटिका में नर्तक चेहरे का भाव, मुद्राएँ व मिजाज बदलते हुए क्रमशः दो या तीन प्रमुख चरित्रों का अभिनय करते हैं। जैसे भगवान कृष्ण, उनकी ईर्ष्यालु पत्नी सत्यभामा व उनकी सौम्य पत्नी रुक्मिणी की तीन पृथक भूमिकाओं को एक ही नर्तक व्यक्ति प्रस्तुत कर सकता है।

नृत्य का सौंदर्यात्मक आनंद इस बात पर निर्भर करता है कि कोई नर्तक किसी विशिष्ट भाव को व्यक्त करने व रस जगाने में कितना सफल है। शाब्दिक रूप में रस का अर्थ 'स्वाद' या 'महक' है और यह आनन्दातिरेक की मनोदशा है, जिसका अनुभव दर्शक किसी नृत्य प्रदर्शन को देखकर करता है। यही बात नाटकों पर भी लागू होती है। इन विधाओं के समीक्षक प्रस्तुति में रस पर अधिक ध्यान देते हैं। नृत्य में नौ रस हैं- शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत और शान्त। इन रसों के ग्रहण से सहृदय के अन्तःकरण में मनोविकास या संस्कार रूप में संगत भाव या स्थायी भाव स्वतः जागृत हो जाते हैं जो क्रमशः हैं- रति या प्रेम, हास्य, शोक या दुःख, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा (घृणा), विस्मय, निर्वेद (राम)।

अध्याय
5

संगीत
(Music)

5.1 संगीत का इतिहास
5.2 संगीत के सात स्वर
5.3 शास्त्रीय संगीत
5.4 विभिन्न राज्यों के लोकगीत
5.5 संगीत में घराना परंपरा
5.6 कुछ संगीतकारों का परिचय
5.7 सिनेमा में संगीत
5.8 भारतीय संगीत के प्रमुख वाद्यों का परिचय

प्राकृतिक ध्वनियाँ कई प्रकार की होती हैं लेकिन जिन ध्वनियों में लय होती है केवल वही संगीत के लिये उपयोगी हैं, बाकी ध्वनियों का संगीत से कोई सरोकार नहीं है। संगीत, भाव उत्पन्न करने वाली ध्वनियों से पैदा होता है। भाव लाने वाली ध्वनियाँ ही संगीत का आधार हैं। संगीत शब्द गीत में सम् जोड़ने से बना है। सम् का आशय है सहित और गीत यानी कि गान। नृत्य और वादन के साथ किया गया गान ही संगीत है। भारतीय संगीत की अवधारणा में गायन, वादन और नृत्य अवश्य ही तीन अलग-अलग कलाएँ स्वीकार की गईं हैं लेकिन तीनों का मेल संगीत कहलाता है।

5.1 संगीत का इतिहास *(History of Music)*

संगीत का इतिहास देखें तो हम पाते हैं कि पौराणिक गाथाओं में इंद्र की सभा का उल्लेख कई जगह मिलता है जहाँ देवराज इंद्र अपने सहयोगियों के साथ संगीत का आनंद ले रहे हैं। उनकी सभा में हमें गायक, नर्तक, और वादकों की उपस्थिति का जिक्र मिलता है। कथाओं में दृश्य वर्णन में गंधर्व गाते हैं, अप्सराएँ नृत्य कर रही होती हैं और किन्नर वाद्य बजा रहे होते हैं। संगीत की सामाजिक जीवन में उपस्थिति के प्रारंभिक प्रमाण हमें सिंधु घाटी की सभ्यता में मिलते हैं। खुदाई में ऐसी मूर्तियाँ और सीलें मिली हैं जिनमें ढोल बजाते हुए लोग बनाए गए हैं। कई मूर्तियों में नृत्य की भंगिमाएँ हैं। नर्तकी की एक प्रसिद्ध मूर्ति, जो कमर पर हाथ रखकर खड़ी है, लगता है नृत्य करने ही जा रही है।

वैदिक युग के ग्रंथ ऋग्वेद में जिक्र मिलता है कि आर्यों के मनोरंजन का मुख्य साधन संगीत था। इस युग के ग्रंथ सामवेद को भारतीय संगीत का मूल माना गया है। इस ग्रंथ में देवताओं की स्तुति करते हुए गाए जाने वाले मंत्रों का वर्णन मिलता है। सामवेद में उच्चारण के हिसाब से तीन प्रकार के स्वरों और संगीत के हिसाब से सात प्रकार के स्वरों का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा रामायण और महाभारत में कई ऐसे प्रसंगों का उल्लेख है जहाँ संगीत की उपस्थिति देखी जा सकती है। तैत्तिरीय उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण, याज्ञवल्क्य-रत्न प्रदीपिका और नारदीय शिक्षा प्रभृति आदि ग्रंथों में उस समय के संगीत का परिचय मिलता है। लेकिन संगीत की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भरत मुनि का नाट्यशास्त्र है। इस ग्रंथ के छह अध्यायों में संगीत पर चर्चा की गई है। इसमें विभिन्न वाद्यों और उन्हें बजाने, छंद, लय और तालों का वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ में छह रागों यथा राग भैरव, राग हिंडोल, राग कौशिक, राग दीपक, राग श्रीराग और राग मेघ का वर्णन मिलता है। इसी तरह का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मतंग मुनि का वृहद् देशी है। इसकी रचना का काल पाँचवी सदी है। संगीत के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में नारद कृत नारदीय शिक्षा और संगीत मकरंद हैं।

आगे चलकर भारतीय संगीत में दो शास्त्रीय परंपराएँ विकसित हुईं। इसमें जो शास्त्रीय परंपरा उत्तर भारत में चली, उसे उत्तर भारतीय संगीत और जो धारा दक्षिण में बलवती हुई, उसे कर्नाटकी संगीत कहा गया। इन दोनों शास्त्रीय परंपराओं के अलावा लोक संगीत भी विकसित और पल्लवित होता रहा। ये तीनों धाराएँ आज भी प्रचलन में हैं और एक-दूसरे को प्रभावित कर रही हैं। इसके अलावा उपशास्त्रीय संगीत भी प्रचलन में है। उपशास्त्रीय संगीत में, शास्त्रीय संगीत की तुलना में गायक को थोड़ी बहुत छूट रहती है। आधुनिक काल में उन्नीसवीं सदी में संगीत में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। हुआ यह कि संगीत के दो विद्वानों ने संगीत के स्वरों की लिपि तैयार की ताकि संगीत को लिखा जा सके। ये विद्वान थे विष्णु नारायण भातखंडे और विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। उस समय तक जो संस्कृत ग्रंथ उपलब्ध थे, वे अधिकांशतः संस्कृत में थे और उन्हें समझना अपेक्षाकृत जटिल था। दूसरी समस्या यह थी कि संगीत को सुन-सुन कर ही लोगों ने सीखा और पीढ़ी दर पीढ़ी संगीत ऐसे ही विकसित हुआ। इसका एक दुष्परिणाम यह था कि संगीत की कई बारीकियां नष्ट हो गईं या परिवर्तित हो गईं। इसका समाधान केवल यही था कि संगीत की लिपि को कागज पर लिख लिया जाए ताकि उसमें परिवर्तन की स्थिति का भान हो सके।

अध्याय
6

भारतीय चित्रकला (Indian Painting)

6.1 भारतीय चित्रकला की मुख्य विशेषताएँ
6.2 प्रागैतिहासिक चित्रकला
6.3 सिंधु घाटी सभ्यता की चित्रकला
6.4 प्राचीन भारतीय गुफा चित्रकलाएँ
6.5 पाल शैली की विशेषताएँ
6.6 चित्रकला की राजस्थान शैली
6.7 मुगल चित्रकला
6.8 पहाड़ी चित्रकला
6.9 आधुनिक काल में चित्रकला
6.10 कुछ प्रमुख चित्रकार

चित्रकला के उद्‌भव के संकेत मनुष्य की सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही मिलने लगते हैं। जैसे-जैसे सभ्यता विकसित होती गई वैसे-वैसे चित्रकला में भी अधिक प्रवीणता देखी जाने लगी। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य गुफाओं में रहता था तो उसने गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी की। बाद में जब नगरीय सभ्यता का उदय होने लगा तो चित्रकारी गुफाओं से निकलकर दैनिक प्रयोग होने वाले माध्यमों तक पहुँच गई। इसके नमूने बर्तनों, वस्त्रों आदि पर प्राप्त हुए हैं। बौद्ध और जैन धर्म के आगमन और उनकी समृद्धि के साथ-साथ चित्रकला में और अधिक कौशल एवं नवीनता के संकेत मिलने लगते हैं। तात्कालिक और उसके उत्तरोत्तर काल की कला में रंग संयोजन और भाव चित्रण, धार्मिकता के गहरे आवरण में डूबा हुआ था। इसके बाद मुगलों का दौर शुरू होने पर भारतीय चित्रकला में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले। मुगल बादशाह जहाँगीर एक इस कला का बेहतरीन जानकार था। इस समय चित्रकारों को व्यापक राजकीय संरक्षण मिला लेकिन उत्तर मुगल काल में गिरती राजनीतिक और आर्थिक स्थिति के कारण जब इन चित्रकारों को संरक्षण मिलना बंद हो गया तो इन्हें स्थानीय जमींदारों और राजाओं ने शरण दी। इस दौरान चित्रकला का व्यापक विकास हुआ। अंग्रेजी राज में एक बार फिर चित्रकला को नई दृष्टि मिली और कला में आंदोलनों का दौर प्रारंभ हुआ। आधुनिक समय के चित्रकारों को वैश्विक स्तर पर सराहना मिली और अद्यतन चित्रकारों ने कला में नवीनतम प्रयोग जैसे विनाइल, कंप्यूटर और विडियो पेंटिग को अपनाना शुरू कर दिया है।

6.1 भारतीय चित्रकला की मुख्य विशेषताएँ *(Salient Features of Indian Painting)*

प्रत्येक समाज की चित्रकला विशिष्ट होती है और वह अपनी ऊर्जा स्थानीय परंपराओं से ग्रहण करती है। भारतीय चित्रकला भी इसका अपवाद नहीं है। उसकी भी शक्ति का अंत:स्रोत यहाँ की परंपराएँ हैं। इसकी विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं में विभाजित करके देखा जा सकता है।

1. **धार्मिक प्रभाव:** भारतीय चित्रकला के लिये धर्म एक बड़ा प्रेरणास्रोत रहा है। अजंता, बाघ आदि गुफाओं में भगवान बुद्ध के जीवन को, तो राजपूत एवं काँगड़ा आदि की चित्रकलाओं में राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओं को स्थान दिया गया है। मुगल शैली में हमें संतों और फकीरों का चित्रण मिलता है। चित्रकला में आधुनिकता के उद्‌गम के साथ धार्मिक भावना में ह्रास के संकेत मिलने लगते हैं। चित्रकला में धार्मिकता के स्थान पर मनुष्य को केंद्र में रखा जाने लगा है। वर्तमान समय में चित्रकारों ने भगवान गणेश के चित्र के साथ अनुपम प्रयोग किये हैं और उन्हें अनेक प्रकार की आकृतियों और भावमुद्रा में प्रस्तुत किया है।
2. **कल्पनाशीलता:** भारतीय चित्रकारों का मन यथार्थ की अपेक्षा कल्पना में ज्यादा रमा है। अनेक देवी-देवताओं को चित्रकारों ने कल्पना की शक्ति के सहारे उन्हें ऐसा जीवंत रूप प्रदान किया कि एक सामान्य हिंदू के मन में ईश्वर का प्रत्यय किसी चित्र के सहारे ही उद्दीप्त हो जाता है। भगवान बुद्ध से जुड़ी कथा के चित्र कल्पना प्रसूत हैं। सृष्टि के संहार और सृजन को कलाकारों ने कल्पना शक्ति के माध्यम से एक छोटे चित्र में ही उकेर कर रख दिया है।
3. **पर्यावरण:** भारतीय संस्कृति पर्यावरण के संरक्षण के साथ सहगामी प्रवृत्ति रखती है। यह प्रवृत्ति चित्रकला में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यहाँ की चित्रकला में कई प्रकार के पेड़, वनस्पतियों, पर्वत, नदियों और पशु पक्षियों का विशद चित्रण मिलता है। इन चित्रों में पुरुष यानी आत्म-तत्त्व और प्रकृति के समन्वय के दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं सौंदर्य

अध्याय
7

रंगमंच, नाटक और सिनेमा
(Theatre, Drama and Cinema)

7.1 भारत में रंगमंच कला
7.2 हिंदी नाट्य परंपरा
7.3 हिंदी रंगमंच परंपरा
7.4 लोक रंगमंच
7.5 कठपुतली कला
7.6 भारतीय सिनेमा का इतिहास और विकास

7.1 भारत में रंगमंच कला *(Theatre Arts in India)*

रंगमंच ऐसा स्थान है जहाँ नाटक और नृत्य का प्रदर्शन संभव होता है। 'रंगमंच' शब्द 'रंग' और 'मंच' से मिलकर बना है। रंग का आशय उपस्थित दृश्य को चित्ताकर्षक बनाने के लिये दीवारों, छतों आदि जगहों को मनोहर बनाने से है। रंग का प्रयोग कलाकारों के वस्त्र और उनका सौंदर्य निखारने के लिये होता है। शब्द 'मंच' का आशय है कि प्रदर्शित किये जा रहे नृत्य और नाटक को, दर्शकों की सुविधा के लिये एक ऊँचे स्थान पर प्रस्तुत करना ताकि सब लोग इसे ठीक से देख सकें। रंगमंच के भवन को रंगशाला या प्रेक्षागार भी कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे थिएटर या ऑपेरा नाम दिया जाता है।

नाटक का आशय है रंगशाला में नटों की आकृति, हाव-भाव, वेश और वचन आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन। इसके अलावा नाटक का आशय ऐसे ग्रंथ या काव्य से भी है जिसमें स्वांग के द्वारा दिखाए जाने वाले चरित्रों का वर्णन हो, इसलिये नाटक को दृश्यकाव्य या अभिनयग्रंथ भी कहा जाता है। प्राचीन परंपरा के अनुसार नाटक की गिनती काव्यों में की जाती है। काव्य दो प्रकार के माने गए हैं–श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद 'नाटक' माना गया है। भरतमुनि का "नाट्यशास्त्र" इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण मिलता है। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रूपक के 27 भेद कहे गए हैं–नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाटयरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण। साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिये गए हैं।

इसके अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) को लेकर लिखना चाहिये। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख-दुःख, अनेक रसों से युक्त होना चाहिये। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिये। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिये। नाटक के प्रधान या अंगी रस शृंगार और वीर हों और शेष सात रस गौण रूप से आएँ। संधिस्थल या मध्यांतर में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिये। उपसंहार या नाटक के अंत में मंगल ही दिखाया जाना चाहिये। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है। अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, मंच पर आकर सभा की प्रशंसा करता है फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें खेले जाने वाले नाटक का प्रस्ताव, कवि-वंश-वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है– आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'अधिकारी' कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'आधिकारिक वस्तु' कहते हैं। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं; जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र। 'सामने लाने' अर्थात् दृश्य उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अभिनय चार प्रकार का होता है–आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अंगों की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो अभिनय किया जाता है उसे वाचिक, वेश बनाकर जो अभिनय किया जाता हैं उसे आहार्य तथा भावों के उद्रेक से कंप, स्वेद आदि द्वारा जो अभिनय होता है उसे सात्विक कहते हैं। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशलों का वर्णन किया गया है। हालाँकि आधुनिक काल में इन नियमों और व्यंजनाओं को स्वीकार नहीं किया जा रहा है।

अध्याय
8

पारंपरिक भारतीय वस्त्र एवं भोजन (Traditional Indian Dresses and Foods)

8.1 भारत में परिधान का इतिहास
8.2 महिलाओं के वस्त्र
8.3 पुरुषों के वस्त्र
8.4 पगड़ी के विभिन्न प्रकार
8.5 भारत के विभिन्न राज्यों का परंपरागत भोजन

भारत में कपड़ों के विभिन्न प्रकारों, उन्हें पहनने के तरीकों की एक विशद परंपरा है। यह परंपरा क्षेत्र बदलने के साथ बदल जाती है और उनपर क्षेत्र विशेष के भूगोल, पर्यावरण और सांस्कृतिक परंपरा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐतिहासिक सन्दर्भों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि स्त्री और पुरुषों का प्रथम वस्त्र वृक्ष के पत्तों या छाल से निर्मित था। इसे कटि प्रदेश से नीचे के हिस्से को ढँकने के लिये प्रयोग किया जाता था। धागे के ज्ञान से कपड़े का बनाया जाना संभव हुआ और शरीर के अन्य अंगों को ढँकने की परंपरा के विकास के साथ-साथ विविधता भी परिलक्षित होने लगी। धीरे-धीरे पर्वों, शुभ अवसरों और अन्य सामूहिक गतिविधियों एवं गीत-संगीत के कार्यक्रमों के लिये सामान्य रोजमर्रा में पहने जाने वाले वस्त्रों से भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने जाने का चलन शुरु हुआ। कपड़ों की रंगाई और विभिन्न रंगों से रंगे कपड़ों के अर्थ निकाले जाने का प्रचलन भी परम्परागत परिप्रेक्ष्य के रूप में शुरू हुआ। उदाहरण के तौर पर हिंदू समुदाय शोक के अवसरों पर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं जबकि पारसी समुदाय उल्लास के अवसरों पर श्वेत वस्त्र पहनते हैं।

रंगों का निर्माण

नील की खेती से मिले नील से वस्त्रों पर नीले रंग से रंगाई होती थी। इसके अलावा नील का प्रयोग नीले रंग से जुड़े अन्य रंगों को बनाने में होता था जैसे- आसमानी, जामुनी और बैंगनी आदि। हरा रंग लाने के लिये पहले हल्दी से रंगाई होती थी फिर नीले रंग से। लेकिन इन प्रक्रियायों से कच्चे रंग ही बनते थे। इन्हें पक्का करने के लिये खाने वाले सोडे (Sodium bi Carbonate), चीनी और कसीस (Iron Sulphate) का प्रयोग होता था। अवध और कोटा में उगाये जाने वाले आल के पौधे की जड़ की छाल से चमकीला लाल रंग बनाया जाता था। लाल रंग मंजिष्ठा से भी प्राप्त किया जाता था। इसे मजीठा भी कहा गया है और इसका प्रयोग रंग पक्का करने में भी होता था। दक्षिण भारत में उगने वाले दंदासा या रंगली दातुन और कचनार के पेड़ की छाल का प्रयोग भी लाल रंग प्राप्त करने में किया जाता था। नारंगी-पीले रंग के लिये शाहाब के प्रयोग का उल्लेख मिलता है जिसे जाफरान के साथ प्रयोग किया जाता था। पीला रंग धाओ के फूल, हर्र-बहेड़ा-आँवला, ढाक और हरसिंगार से प्राप्त किया जाता था। भूरा रंग बबूल की छाल, कत्थे और मेंहदी से तैयार होता था। कपड़ों की रंगाई के लिये लाख का प्रयोग भी होता था, हालाँकि महँगा होने के कारण इसका प्रयोग सीमित था।

8.1 भारत में परिधान का इतिहास *(History of Clothing in India)*

ऐतिहासिक साक्ष्यों पर यदि दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट है कि हड़प्पा काल में कपास के धागों से बने हुये वस्त्रों का प्रयोग होता था। इसके अलावा रेशमी एवं ऊनी वस्त्रों के प्रयोग के भी प्रमाण हैं। एलोरा की गुफाओं में मिली मूर्तियों, अजंता तथा अन्य जगहों से मिले भित्ति चित्रों में पुरुषों को धोती और महिलाओं को साड़ी पहने दिखाया गया है। कपड़े पहनने की यह परम्परागत शैली आज तक अक्षुण्ण चली आ रही है। जातककालीन मानव-समाज भी विभिन्न प्रकार के वस्त्रों-सूती, ऊनी, क्षौम, कौषिए (सिल्क) आदि से परिचित था। 'तुण्डिल जातक' के अनुसार, बनारस में कपास के खेत थे। 'महाउम्मग जातक' में गाँव के बाहर स्थित कपास के खेतों की रखवाली करने वाली नारियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी जातक के अनुसार रखवाली करते समय ही खेत-रक्षिका ने वहीं से कपास लेकर, बारीक सूत कातकर गोला बनाया। सूती वस्त्र निर्माण के साथ-साथ बनारस और बिहार में आधुनिक युग की भाँति उच्च कोटि का सिल्क निर्माण कार्य किया जाता था। रेशमी और सूती वस्त्र बहुत लोकप्रिय थे। क्षोम्य (ऊनी) सामान्य वस्त्र था, जिससे भिक्षु अपने चीवर बनाते थे। जातकों में उच्च वर्ग के द्वारा क्षौम वस्त्र के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। जातकों में भी गान्धार कम्बल को विशेष महत्त्व दिया गया है। वस्त्रों को तंतुवाय (कोलिय) जाति के लोग बुनते थे।

अध्याय
9

युद्धकला और परंपरागत खेल (Martial Art and Traditional Sports)

9.1 भारत की प्रमुख युद्धकला
9.2 खेल से जुड़ी महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ एवं पुरस्कार
9.3 परंपरागत भारतीय खेलों का परिचय

9.1 भारत की प्रमुख युद्धकला *(Major Martial Art of India)*

मार्शल आर्ट या लड़ाई की कलाएँ, किसी शारीरिक हमले से बचाव के लिये प्रशिक्षण की परंपराएँ हैं। इनमें सिद्धहस्त होने के लिये नियमित अभ्यास और कड़े प्रशिक्षण की जरूरत होती है। इस कला का उद्देश्य हमला करना नहीं अपितु बचाव या खतरे से रक्षा करना होता है। मार्शल आर्ट को विज्ञान और कला दोनों माना जाता है। विज्ञान इसलिये क्योंकि इसके नियम निश्चित हैं और कला इसलिये कि इसमें कौशल की अभिव्यक्ति होती है। युद्धकला को धर्म से भी जोड़ा गया है और कहीं-कहीं इसने नृत्य का रूप धारण कर लिया है। चीन की युद्धकलाओं को धर्म और धर्मगुरुओं की रक्षा से जोड़ कर देखा जाता है। इसी तरह भारत में सिक्खों की युद्धकला 'गतका' भी धर्म से प्रेरित है। कुछ प्रसिद्ध भारतीय युद्धकलाओं का परिचय इस प्रकार है:

कलारिपयट्टू *(Kalaripayattu)*

कलारिपयट्टू

केरल के मार्शल आर्ट कलारिपयट्टू को विश्व में मार्शल आर्ट का सर्वाधिक प्राचीन और सबसे वैज्ञानिक रूप माना जाता है। लड़ाई का प्रशिक्षण कलारि यातीनामक एक प्रशिक्षण स्कूल में दिया जाता है। कलारि के नियमों के तहत मार्शल आर्ट के प्रशिक्षण की शुरुआत शरीर की तेल-मालिश से की जाती है जो देह को फुर्तीला और लचीला बनाता है। इसके बाद चाट्टोम (कूद), ओट्टम (दौड़), मरिचिल (कलाबाजी) आदि जैसे करतब सिखाए जाते हैं जिसके बाद कटार, तलवार, भाला, गदा, धनुष-बाण जैसे हथियार चलाने की विद्या सिखाई जाती है। कलारिपयट्टू के प्रशिक्षण का उद्देश्य व्यक्ति के मन और शरीर के बीच बेहतरीन तालमेल स्थापित करना होता है। कलारि के पारंपरिक प्रशिक्षण में देशी चिकित्सा विधियों को भी शामिल किया जाता है। कलारि धार्मिक पूजन के भी केन्द्र होते हैं। कलारिपयट्टू के सामान्य नियमों के तहत व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रशिक्षण पूरा होने के बाद भी तेल मालिश और बाकी के व्यायाम जारी रखेगा। किलारिपटाट्अू का प्रभाव कथकली नृत्य पर पड़ा है।

सिलांबम *(Silambam)*

थांग-टा

यह तमिलनाडु में प्रचलित युद्धकला है। माना जाता है कि पांड्य शासकों ने इस कला को प्रश्रय दिया। तमिल ग्रंथ शिल्लपादिकरम में इसका उल्लेख मिलता है। इसमें मुख्यत: लाठियों का प्रयोग होता है और कभी-कभी दूसरे प्रकार के अस्त्रों जैसे हिरण के सींगों का भी इस्तेमाल किया जाता है। इसे मिट्टी के मैदान में खेला जाता है। जब इसमें दो खिलाड़ी होते हैं तो इसकी अवधि छह से दस मिनट तक होती है। जब इसे बिना शस्त्रों के खेलते हैं तो इसे कुट्टु वरिसई कहा जाता है। तमिलनाडु की एक और युद्धकला का नाम वरमा कलाई है और इसे कुट्टु वरिसई का आवश्यक अंग भी माना जाता है।

अध्याय
10

प्रमुख भारतीय भाषाएँ (Major Indian Languages)

10.1 भाषा-परिवार
10.2 भारतीय भाषाओं का विकास क्रम
10.3 भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएँ

भाषा मन के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। इसके माध्यम से मानव स्वयं के मनोभावों एवं विचारों को दूसरे के सामने अभिव्यक्त कर सकता है। वह आन्तरिक अनुभूति जो संचार की शैली को सीखने एवं व्यवहार में लाने में सक्षम बनाती है, भाषा कहलाती है। शुरुआत में आदि मानव अपने मनोभावों को अपने शारीरिक अंगों द्वारा संकेतों के माध्यम से व्यक्त करता था, लेकिन धीरे-धीरे मानव मस्तिष्क एवं उसके अनेक भागों के विकसित होने से मानव में भाषा का ज्ञान एवं विकास संभव हुआ।

10.1 भाषा-परिवार *(Language-Family)*

दुनिया भर में बोली जाने वाली करीब सात हजार भाषाओं को दस परिवारों में विभाजित किया गया है। इनके नाम हिंद यूरोपीय (Indo-European), चीनी तिब्बती (Sino-Tibetan), नाइजर-कांगो (Nizer-Congo), एफ्रोएशियाटिक (Afroasiatic), ऑस्ट्रोएशियन (Austroasian), द्रविड़ भाषाएँ (Dravidian), आल्टिक भाषाएँ (Altic), जैपोनिक (Japonic), आस्ट्रोएशियाटिक (Austroasiatic) और ताई-कड़ाई (Tai-Kadai) हैं। इनमें से हिंद-यूरोपीय, द्रविड़ भाषा और ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा परिवारों की विभिन्न भाषाएँ भारत में प्रयुक्त होती हैं। इन तीनों के अलावा भारत में अंडमानी भाषा परिवार भी स्वीकृत किया गया है। इनमें हिंद-यूरोपीय भाषा परिवार (Indo-European Family) समूह भाषाओं का सबसे बड़ा परिवार है। इसमें अंग्रेजी, रूसी, प्राचीन फारसी, हिंदी, पंजाबी, जर्मन, संस्कृत, ग्रीक और लैटिन आदि भाषाएँ रखी गई हैं। इसी समूह को आर्य परिवार भी कहा जाता है।

> पूरी दुनिया की भाषाओं के अध्ययन के बाद कुछ वैज्ञानिक आधार तय किये गए जिसके अनुसार इस समय संसार की भाषाओं की तीन अवस्थाएँ हैं। विभिन्न देशों की प्राचीन भाषाएँ जिनका अध्ययन और वर्गीकरण पर्याप्त सामग्री के अभाव में नहीं हो सका है उन्हें पहली अवस्था में रखा गया है। इनका अस्तित्व प्राचीन शिलालेखों, सिक्कों और हस्तलिखित पुस्तकों में सुरक्षित है। मेसोपोटेमिया की पुरानी भाषा 'सुमेरीय' तथा इटली की प्राचीन भाषा 'एत्रस्कन' को इस वर्ग में रखा गया है। दूसरी अवस्था में ऐसी आधुनिक भाषाएँ हैं, जिनकी सामग्री तो पर्याप्त है लेकिन उन पर उचित शोध नहीं हुआ है। बास्क, बुशमैन, जापानी, कोरियाई, अंडमानी आदि भाषाएँ इसी अवस्था में हैं। तीसरी अवस्था की भाषाओं में सामग्री की प्रचुरता, अध्ययन एवं वर्गीकरण हो चुका है। इसमें ग्रीक, अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि अनेक विकसित एवं समृद्ध भाषाएँ रखी गई हैं।

हिंद यूरोपीय भाषा परिवार की 439 भाषाओं को पुनः दस वर्गों में बाँटा गया है। इन्हीं दस वर्गों में एक वर्ग 'हिंद-ईरानी' (Indo-Iranian) का है। इस हिंद-ईरानी वर्ग के तीन उपविभाजन किये गए हैं, हिंद-आर्य या इण्डिक (Indo-Aryan or Indic), ईरानी (Iranian) और नूरिस्तानी (Nuristani)। हिंद-आर्य उपवर्ग में हिंदी, पंजाबी, मराठी आदि भाषाएँ रखी गई हैं। ईरानी उपवर्ग में फारसी, पश्तो, कुर्दिश, बलूची आदि भाषाएँ आती हैं जबकि नूरिस्तानी में अफगानिस्तान क्षेत्र की अस्कुनु, वसी-वारी, तरीगामी आदि भाषाएँ रखी गई हैं।

भारत की दो-तिहाई से अधिक आबादी हिंद-आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है। इनमें संस्कृत समेत मुख्यतः उत्तर भारत में बोली जाने वाली अन्य भाषाएँ जैसे हिंदी, उर्दू, मराठी, नेपाली, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कोंकणी इत्यादि शामिल हैं।

अध्याय
11

भारत की प्रमुख लिपियाँ (Major Scripts of India)

यह मान लिया गया है कि भाषा के विकास के बाद ही लिपि का विकास हुआ है। मानव को जब अपने विचार और भाव सुरक्षित रखने की सुविधा की आवश्यकता होने लगी तो उसके कदम लिपि की ओर बढ़े। लिपि ने ही उसके द्वारा निकले शब्दों या ध्वनियों को एक निश्चित रूप प्रदान किया जिसका परिणाम यह रहा कि विचारों या भावों को एक सुरक्षित रूप दिया जाना संभव हो सका और एक समूह के विचारों को समूह को दूसरे सही रूप से अवगत कराना संभव हो सका। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि लिपि लेखन की ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा भाषा का अस्तित्व सुरक्षित रखा जाता है और जिसका प्रयोग लंबे समय तक किया जाना संभव हो सकता है।

लिपि प्रतीकों की एक व्यवस्था है। लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिये एक प्रतीक निश्चित होता है जो एक चिह्न या चित्र के रूप में अंकित किया जाता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषा और लिपि में महत्त्वपूर्ण संबंध तो है लेकिन दोनों समरूप नहीं हैं। दोनों में समानता यह है कि दोनों में ध्वनि संकेतों को प्रयोग में लाया जाता है, दोनों ही विचार और भावों की अभिव्यक्ति के तरीके हैं और दोनों ही ध्वनियों पर आधारित हैं। दोनों में असमानता यह है कि भाषा ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जबकि लिपि में लिखित चिह्न प्रयोग में लाए जाते हैं। भाषा का काल और स्थान से सीधा संबंध है। इसका आशय है कि भाषा में काल और स्थान परिवर्तन से बदलाव आ सकते हैं जबकि लिपि की आयु स्थान और काल के दृष्टिकोण से बहुत ज्यादा होती है। भाषा विविध ध्वनियों का समग्र रूप है, जबकि लिपि उन्हीं ध्वनियों के चिह्नों की समष्टि है। ये चिह्न रेखाओं, वर्गात्मक या गणितीय चिह्नों या चित्र से बनाए जाते हैं।

मनुष्य के सभ्य होते जाने के क्रम में उसके पास भावों की प्रचुरता होने लगी होगी लेकिन इसका अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके पास इन भावों की अभिव्यक्ति के लिये चित्र बनाने का कोई उपाय नहीं रहा होगा। इस बात की पुष्टि गुफा चित्रों से होती है। भारत में भीमबेटका की गुफा में पाए गए शैलचित्र इसी बात का प्रमाण हैं। इससे यह माना जा सकता है कि लेखन कला की शुरुआत चित्रलिपि से हुई। इसकी खासियत यह थी कि यह बहुत सरल थी और सभी लोगों की समझ में आती थी लेकिन इसकी सबसे बड़ी समस्या यह थी कि इसके पदार्थों का निरूपण तो संभव था लेकिन भावों का नहीं।

भारत में लिपि की उत्पत्ति सिंधु घाटी सभ्यता से मानी जाती है। सिंधु घाटी सभ्यता में लेखन कला की उपस्थिति के अनेक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इस सभ्यता के लोग पढ़ना और लिखना जानते थे।

भारत में प्रचलित कुछ लिपियों का विवरण इस प्रकार है–

सिन्धु लिपि

सिंधु लिपि: सिंधु लिपि भारत की प्राचीनतम लिपि है। अनेक प्रयासों के बावजूद सिंधु लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। सिंधु घाटी से सेलखड़ी, मिट्टी, हाथी दाँत की अनेक वस्तुएँ मिली हैं जिन पर प्रतीक-चिह्न मिले हैं। इन चिह्नों में पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी शामिल हैं। इस लिपि के स्वरूप के मामले में विद्वान दो समूहों में बँटे हुए हैं। एक विद्वान समूह मानता है कि यह यूरोपीय या हिंद आर्य (भारोपीय) परिवार की भाषा है जबकि इसका समूह मानता है कि यह द्रविड़ मूल की भाषा से संबंधित है। इसके अलावा कई और लोगों ने व्यक्तिगत प्रयासों से इसे पढ़ने का दावा किया है लेकिन इन दावों की पुष्टि नहीं हो सकती है। भाषा वैज्ञानिकों ने इसके करीब 396 चिह्नों को पहचान कर सूचीबद्ध कर दिया है। यह बात भी स्पष्ट हो चुकी है कि इसे अरबी लिपि की तरह दाएँ से बाएँ की ओर लिखा जाता है।

अध्याय
12

धर्म
(Religion)

12.1 धर्म का अर्थ
12.2 विश्व के प्रमुख धर्म

12.1 धर्म का अर्थ *(Meaning of Religion)*

'धर्म' की अवधारणा व्यापक है। धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'धृ' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है 'धारण करना'। जो कुछ भी धारण करने योग्य है, वही धर्म है। विस्तृत अर्थ में धर्म शब्द का आशय 'कर्त्तव्यपालन' या 'अभ्युदय' से है। हिंदू धर्म के धार्मिक ग्रंथों में मनुष्य को उसके धर्म का पालन करने पर जोर दिया गया है। इन ग्रंथों में मनुष्य से यही अपेक्षा की गई है कि वह अपने धर्म यानी नैतिक कर्त्तव्यों का पालन करे। जैनों ने धर्म शब्द का अर्थ 'विशेषता' से लगाया है। जैन दार्शनिक ग्रंथों में कहा गया है कि प्रत्येक वस्तु के अनंत धर्म होते हैं यानी प्रत्येक वस्तु की असंख्य विशेषताएँ होती हैं। बौद्धों ने सत्ता की व्याख्या चेतन और अचेतन धर्मों के रूप में की है। धर्म शब्द को अंग्रेजी के 'रिलीजन' (Religion) के समानार्थी माना गया है। इसमें 'रि' (Re) शब्द का आशय 'दोबारा' और लीजन (Ligion) का 'बाँधने' से है। यानी रिलीजन का अर्थ हुआ 'दोबारा से बाँधना'। 'बाँधना' को आत्मा का परमात्मा से जुड़ने के रूप में देखा गया है। इस प्रकार रिलीजन वह अभिवृत्ति है जो अलौकिक सत्ताओं को मनुष्य के साथ भावनाओं और क्रियाओं के स्तर पर जोड़ती है। कुछ समाजशास्त्रियों जैसे पार्सन्स और दुर्खीम आदि ने कहा कि विभिन्न समाजों में मनुष्य का जीवन व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये कुछ विश्वास, कर्मकांड और संस्थाएँ बनाई गई हैं, जिनको सम्मिलित रूप से धर्म कहा जा सकता है। उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में धर्म को इस प्रकार परिभाषित करने का प्रयास किया जा सकता है–

''धर्म एक व्यापक अभिवृत्ति है, जिसमें किसी अलौकिक शक्ति या अवस्था में विश्वास, मनुष्य की भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति, कर्मकांड, नैतिक आचरण आदि पक्षों पर बल दिया जाता है तथा यह मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है।''

12.2 विश्व के प्रमुख धर्म *(Major Religions of the World)*

विश्व के सभी धर्मों को अध्ययन की सुविधा के लिये प्रायः तीन वर्गों में बाँटा गया है। इनमें पहला प्रकार 'आदिम या प्रारंभिक' (Primitive Religion) धर्म का है। ये ऐसे धर्म होते हैं जिन्हें मानव ने इतिहास के उस कालखंड में निर्मित किया जब वह सभ्यता के प्रारंभिक चरणों से गुजर रहा था। तब मनुष्य जंगलों, पहाड़ों आदि जगहों पर झुंड बनाकर रहता था। उसने अपनी आवश्यकताओं, सुरक्षा और भय जैसी समस्याओं के समाधान के लिये कुछ नियम बनाये। तब उसके विचार में ईश्वर, स्वर्ग, कर्मफल जैसी धारणाएँ विकसित रूप में नहीं थीं। इस वर्ग में जीववाद, मानववाद, प्राणवाद, टोटमवाद आदि धारणाओं वाले धर्मों को रखा गया है। दूसरा वर्ग प्राकृतिक धर्मों (Naturalistic Religion) का है। ये धर्म मनुष्य की सभ्यता के विकास के दूसरे चरण में विकसित हुए। इस युग में मनुष्य में तार्किकता का विकास अपेक्षाकृत अधिक हुआ। नतीजतन वह 'ईश्वर' आदि धारणाओं का प्रयोग करने लगा और उसने प्रकृति की शक्तियों को ईश्वर जैसा महत्त्व दे दिया। प्रकृति में एकाधिक तत्त्वों की भूमिका के कारण इस वर्ग में अनेकेश्वरवाद की प्रवृत्ति मुख्य तौर पर दिखाई देती है। इस वर्ग में ताओ धर्म, वैदिक धर्म, बेबीलोनिया का धर्म, मिस्र का धर्म, शिंतो धर्म, ग्रीक धर्म, रोमन धर्म और बीसवीं सदी के मानववादी और अन्य प्रकृतिवादी धर्मों को रखा गया है। तीसरे वर्ग में आध्यात्मिक धर्म (Spiritual Religion) आते हैं। ये धर्म अपनी उच्च विकास अवस्था को दर्शाते हैं। इनमें वे धर्म आते हैं जो जगत की व्याख्या परम आध्यात्मिक सत्ता या ईश्वर के आधार पर करते हैं। इन धर्मों में सामान्यतः एकेश्वरवाद की प्रवृत्ति दिखती है। इनमें इस्लाम, यहूदी, सिख और ईसाई आदि धर्मों को रखा गया है। पारसी और हिंदू धर्म में यही प्रवृत्ति दिखती है लेकिन इन धर्मों में एक ईश्वर को उतना महत्त्व नहीं दिया गया है जितना इस्लाम, यहूदी, ईसाई आदि धर्मों में।

अध्याय
13

दार्शनिक प्रवृत्तियाँ (Philosophical Trends)

13.1 भारतीय दर्शन की विशेषताएँ	13.4 प्रमुख दार्शनिक संत
13.2 जैन एवं बौद्ध दर्शन	13.5 सूफीवाद
13.3 षड्दर्शन	13.6 भारत में प्रमुख सूफी सिलसिला

मनुष्य केवल हाड़-माँस का पुतला भर नहीं है। वह इस संसार का अपने ढंग से अनुभव करता है। दुनिया को देखकर चकित होता है और कई प्रकार के सवाल खुद से तथा औरों से पूछता है। उसके कुछ सवाल इस प्रकार होते हैं कि आखिरकार सच क्या है, सच किसे मानें, सच तक पहुँचने के तरीके क्या हैं, यह दुनिया क्या है, स्वर्ग-नर्क क्या है, क्या वास्तव में ईश्वर है, धर्म क्या है, या फिर हम क्या हैं और क्यूँ इस दुनिया में आए हैं, हमारा इस दुनिया में आने का मकसद क्या है, यह सिलसिला कब तक चलता रहेगा आदि। इंसान के इन सवालों के जवाब ढूंढने की कोशिश सदियों से चली आ रही है। इन प्रयासों का समग्र अध्ययन ही दर्शनशास्त्र है।

दर्शन शब्द का साधारण अर्थ है- देखना। दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'दृश' धातु से मानी जाती है जिसका आशय देखने से है। जब हम दर्शनशास्त्र शब्द का प्रयोग करते हैं तो बात और गहरी हो जाती है। इसमें दर्शन का आशय चीजों को साधारण तौर पर देखने से ही नहीं लिया जाता बल्कि उसके स्वरूप को देखा जाता है यानी दर्शन चीजों के स्वरूप का ज्ञान है, तत्त्व का ज्ञान है। इसलिये दर्शन को तत्त्व दर्शन भी कहा जाता है। दर्शन का अंग्रेजी अनुवाद 'Philosophy' है। यहाँ फिलॉस का आशय अनुराग या प्रेम से है और सोफिया का आशय ज्ञान से। इस प्रकार फिलॉसफी का आशय हुआ ज्ञान के प्रति अनुराग या प्रेम। भारतीय परंपरा में दर्शन शब्द का अर्थ 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम' से है। यानी जिसके द्वारा दिव्य दृष्टि मिल सके वही दर्शन है। इस प्रकार यह पाश्चात्य दर्शन की तरह केवल बौद्धिक विलास नहीं है बल्कि जीवन के परम लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन है। भारतीय दार्शनिक चिंतन केवल सैद्धांतिक नहीं है, वह सिद्धांतों को जीवन में उतारने पर बल देता है।

भारतीय दर्शन की कई प्रवृत्तियाँ सैकड़ों वर्षों से चली आ रही हैं। इनमें से नौ प्रवृत्तियों को प्रमुख माना गया है जिन्हें अध्ययन की सुविधा के लिये दो वर्गों में बाँटा गया है। पहला वर्ग 'नास्तिक दार्शनिक प्रवृत्ति' का है और इसमें चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन को रखा जाता है। दूसरा वर्ग 'आस्तिक दार्शनिक प्रवृत्ति' का है जिसमें शेष छह दर्शनों या षड्दर्शनों यानी सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा को रखा जाता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि आस्तिक और नास्तिक का भेद सामान्य मानस में प्रचलित ईश्वर में विश्वास के आधार पर न होकर इस आधार पर है कि जो शाखा वेदों में विश्वास रखती है वह आस्तिक और जो वेदों में अविश्वास व्यक्त करती है वह नास्तिक शाखा है।

13.1 भारतीय दर्शन की विशेषताएँ *(Salient Features of Indian Philosophy)*

भारतीय दर्शन में प्रश्नों का गूढ़ विवेचन किया गया है। ये विचार एक-दूसरे से पर्याप्त सीमा तक भिन्न हैं। षड्दर्शन में प्रत्येक दर्शन एक संप्रदाय (School) का सूचक है और उसकी अलग प्रकार की मान्यताएँ हैं। इसके बाद भी इस भिन्नता में अभिन्नता, अनेकता में एकता, विषमता में समता ही भारतीय दर्शन की विशेषता है। आस्तिक और नास्तिक दर्शन वर्ग के बाह्य स्वरूप में भिन्नता अवश्य होती है लेकिन इनके आंतरिक स्वरूप में एकता के दर्शन होते हैं। सभी दर्शनों में इस आंतरिक साम्य को आध्यात्मिक साम्य भी कहा गया है। भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताएँ संक्षिप्त रूप में इस प्रकार मानी जा सकती है।

भारतीय दर्शन की सबसे पहली विशेषता है इसका अध्यात्म केन्द्रित होना। चार्वाक दर्शन को छोड़कर बाकी सभी भारतीय दर्शनों, संप्रदायों और धर्मों को एक आध्यात्मिक यात्रा के रूप में देखा जा सकता है। भारतीय दर्शन संबंधी ग्रंथ मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रोत्साहित करते हैं। आध्यात्मिक जीवन का आशय आत्म के विकास से है।

अध्याय
14

प्रमुख वास्तुविद् एवं उपयोगी शब्दावली (Important Architects and Useful Terminologies)

14.1 प्रमुख वास्तुविद्	14.3 विश्व की कुछ महत्त्वपूर्ण वास्तुकला
14.2 भारतीय देशी वास्तुशिल्प	14.4 विविध महत्त्वपूर्ण शब्द तथा उनके अर्थ

14.1 प्रमुख वास्तुविद् *(Prominent Architects)*

1. अनंत राजे

इनका जन्म मुंबई में हुआ। फिलाडेल्फिया और सर जे.जे. कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर में इन्होंने वास्तुशिल्प में अध्ययन किया। अनंत राजे के निरीक्षण में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण भवनों का निर्माण संपन्न हुआ–

(i) भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद में कार्यकारी प्रबंधन केन्द्र।

(ii) भोपाल में वन प्रबंधन संस्थान।

(iii) नई दिल्ली स्थित भारतीय सांख्यिकी संस्थान।

अनंत राजे की उपलब्धियों में उनके अध्यापन कार्य भी सम्मिलित हैं। उन्होंने अहमदाबाद के सीईपीटी विश्वविद्यालय में वास्तुशिल्प फैकल्टी तथा अमेरिका के न्यू मैक्सिको विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। राजे का निधन वर्ष 2009 में हो गया।

2. पद्म श्री अच्युत पी. कांवींडे

आधुनिक भारतीय वास्तुकला के जनकों की श्रेणी में शामिल कांवींडे का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था। इन्होंने वास्तुकला की शिक्षा सर जे.जे. कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर और हार्वर्ड विश्वविद्यालय से ग्रहण की।

इन्होंने अपने सहयोगी एस. राय के साथ मिलकर नई दिल्ली में कांवींडे राय और चौधरी नामक एक संस्था की शुरुआत की। इसके जरिये विभिन्न महत्त्वपूर्ण भवनों जैसे आईआईटी कानपुर, राष्ट्रीय विज्ञान केंद्र नई दिल्ली, एनआईआई पुणे, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड के अंतर्गत अनेक डेयरी भवन का निर्माण किया गया।

3. बालकृष्ण विट्ठलदास दोषी

इनका जन्म पुणे में हुआ था। ये दक्षिण एशियाई वास्तुशिल्प के श्रेष्ठ वास्तुविद माने जाते है। पेरिस में ली कार्बुजियर के साथ 4 वर्षों तक काम करने के उपरांत ये भारत लौटे। वर्ष 1955 में इन्होंने वास्तुशिल्प (पर्यावरणीय डिजाइन) नामक एक स्टूडियो की स्थापना की।

इनके नेतृत्व में बने प्रमुख निर्माण कार्यों में से हैं- अहमदाबाद में सेंटर फॉर एनवायरनमेंट एंड पेंटिंग टेक्नोलॉजी, बंगलुरु में भारतीय प्रबंधन संस्थान, दिल्ली में राष्ट्रीय फैशन डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद में अहदावाद नी गुफा।

वास्तुशिल्प के पुरोधा होने के साथ-साथ ये एक शिक्षाविद् भी थे। ये अहमदाबाद के वास्तुशिल्प विद्यालय, स्कूल ऑफ प्लानिंग के प्रथम संस्थापक निदेशक रहे। इन्होंने अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनेक महत्त्वपूर्ण पद भी ग्रहण किये। अपने कार्यक्षेत्र एवं शैक्षणिक क्षेत्र में अमूल्य योगदानों के कारण इन्हें अनेक अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय पुरस्कारों तथा सम्मानों से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने इन्हें 'पद्म श्री' सम्मान दिया। पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय से ही इन्हें डॉक्टरेट की मानद उपाधि मिली। वर्ष 2011 में इन्हें कला के लिये फ्राँस के सर्वोच्च सम्मान 'ऑफीसर ऑफ द ऑर्डर ऑफ आर्ट्स एंड लेटर्स' से सम्मानित किया गया।

अध्याय
15

भारत के सांस्कृतिक संस्थान (Cultural Institutions of India)

किसी भी राष्ट्र के लिये उसकी संस्कृति एवं विरासत उसके अभिन्न एवं अमूल्य हिस्से होते हैं। प्रत्येक देश अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं परिरक्षण करने का प्रयास करता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 49 राष्ट्रीय महत्त्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण का दायित्व राज्य को सौंपता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51क(च) लोगों का यह मौलिक कर्त्तव्य मानता है कि वे देश की सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझेंगे और उसका परिरक्षण करेंगे।

भारत सरकार का 'संस्कृति मंत्रालय' देश में विरासत एवं संस्कृति के संरक्षण, विकास एवं संवर्द्धन के लिये ज़िम्मेदार शीर्ष निकाय है। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने का भी कार्य करता है।

महत्त्वपूर्ण संस्थान *(Important Institutions)*

ललित कला अकादमी

5 अगस्त, 1954 को भारत सरकार द्वारा ललित कला अकादमी, मुख्यालय दिल्ली (रवीन्द्र भवन) में स्थापना की गई और 11 मार्च, 1957 को इसका पंजीकरण समिति पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत किया गया।

- भारत में दृश्य कलाओं के क्षेत्र में ललित कला अकादमी शीर्ष सांस्कृतिक संस्था है।
- यह एक स्वायत्तशासी संस्था है जो पूर्णतया संस्कृति मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित है।
- यह पेंटिंग, मूर्तिकला, चीनी-मिट्टी की कलाओं, ग्राफिक कला, जनजातीय कलारूपों आदि के अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित करती है।
- अकादमी के लखनऊ, कोलकाता, चेन्नई, नई दिल्ली, शिमला, भुवनेश्वर, शिलॉन्ग में क्षेत्रीय केंद्र हैं; जिन्हें राष्ट्रीय कला केंद्र कहा जाता है।
- अकादमी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन करती है और छात्रवृत्तियाँ व अकादमी रत्न सदस्यता प्रदान करने हेतु योग्य व्यक्तियों का चयन करती है।
- अकादमी का स्थायी संग्रह भारतीय समकालीन और आधुनिक कला की रहस्योद्घाटक प्रवृत्तियों, जटिलताओं और सजीवता को प्रतिबिंबित करता है।

संगीत नाटक अकादमी

संगीत नाटक अकादमी, भारत सरकार द्वारा स्थापित संगीत, नृत्य एवं नाटक की राष्ट्रीय अकादमी है। 31 मई, 1952 को इसका गठन किया गया था। 11 सितंबर, 1961 को इसका पुनर्गठन, समिति पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत एक सोसाइटी के रूप में किया गया।

- प्रदर्शन कला में विशेषज्ञता प्राप्त शीर्ष संस्था के रूप में अकादमी प्रदर्शन कला से संबंधित नीतियाँ और कार्यक्रम बनाने में भारत सरकार को परामर्श और सहयोग प्रदान करती है।
- अकादमी भारत के विभिन्न क्षेत्रों और भारत व विश्व के बीच सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने की ज़िम्मेदारी भी निभाती है।

अध्याय
16

सम्मान एवं पुरस्कार (Honour and Awards)

भारतीय गणराज्य अपने नागरिकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किये गए उत्कृष्ट सृजन व राष्ट्र एवं समाज के प्रति उनके द्वारा दिये गए अमूल्य योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्हें सम्मानित करता है। प्रतिवर्ष ये सम्मान कला, सामाजिक सेवा, लोक सेवा, विज्ञान, चिकित्सा, साहित्य, खेल-कूद आदि क्षेत्रों में प्रदान किये जाते हैं। इसके अलावा राष्ट्र उन विदेशी नागरिकों को भी सम्मानित करता है जिन्होंने अन्य राष्ट्रों के साथ भारत के संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में महती भूमिका निभाई हो और भारतीय कला-संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग रखते हुए उसके देश-विदेश में प्रचार-प्रसार व संवर्द्धन में अमूल्य योगदान दिया हो। भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मान एवं पुरस्कार निम्नलिखित हैं-

भारत रत्न *(Bharat Ratna))*

'भारत रत्न', भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान है, 1954 में स्थापित यह सम्मान किसी भी क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि व असाधारण सेवा के लिये प्रदान किया जाता है। एक वर्ष में अधिकतम तीन लोगों को (1999 में चार लोगों को दिया गया) यह पुरस्कार प्रदान किया जा सकता है, जिसकी सिफारिश स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रपति को की जाती है। सम्मान में व्यक्ति को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाण-पत्र और एक पदक प्रदान किया जाता है। पीपल के पत्ते के आकार के काँसे के बने पदक के एक ओर प्लेटिनम का बना उगता सूर्य जिसके नीचे देवनागरी लिपि में 'भारत रत्न' लिखा होता है व दूसरी ओर प्लेटिनम का बना भारत का राष्ट्रीय प्रतीक उकेरा गया होता है। अन्य अलंकरणों के समान इस सम्मान को भी नाम के साथ पदवी के रूप में नहीं प्रयोग किया जा सकता। भारत रत्न अलंकरण से सम्मानित व्यक्ति केन्द्र सरकार की वरीयता सूची में 7A स्थान पर आते हैं। सन् 2019 तक कुल 48 लोगों को यह सम्मान प्रदान किया गया है, जिसमें 14 व्यक्तियों को यह पुरस्कार मरणोपरांत दिया गया। खान अब्दुल गफ्फार खाँ (1987) व नेल्सन मंडेला (1990), वे दो विदेशी व्यक्ति हैं जिन्हें भारत रत्न अलंकरण से सम्मानित किया गया है। दिसंबर 2014 में पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी महामना मदन मोहन मालवीय (मरणोपरांत) को भारत रत्न से सम्मानित किये जाने की घोषणा की गई, जिन्हें 2015 में यह पुरस्कार प्रदान किया गया। 2019 में यह पुरस्कार प्रणव मुखर्जी (पूर्व राष्ट्रपति), नानाजी देशमुख (भारतीय समाज सेवा और जनसंघ नेता) और भूपेन हजारिका (गायक) को प्रदान किया गया।

भारत रत्न, पद्म अलंकरण व अन्य पदक 'भारत प्रतिभूति मुद्रण तथा मुद्रा निर्माण निगम लिमिटेड' की कोलकाता स्थित टकसाल में निर्मित किये जाते हैं।

भारत रत्न से सम्मानित व्यक्ति

वर्ष	नाम	वर्ष	नाम
1954	चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ. चंद्रशेखर वेंकट रमन	1987	खान अब्दुल गफ्फार खाँ
1955	डॉ. भगवान दास, डॉ. मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया, पण्डित जवाहरलाल नेहरू	1988	एम.जी. रामचन्द्रन (मरणोपरांत)
1957	पंडित गोविंद बल्लभ पंत	1990	भीमराव अंबेडकर (मरणोपरांत), नेल्सन मंडेला
1958	डॉ. धोंडो केशव कर्वे	1991	राजीव गांधी (मरणोपरांत), सरदार वल्लभभाई पटेल (मरणोपरांत), मोरारजी देसाई
1961	डॉ. बिधानचंद्र रॉय, पुरुषोत्तम दास टंडन	1992	मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (मरणोपरांत), जेआरडी टाटा, सत्यजीत रे

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- क्विक रिवीजन हेतु प्रत्येक अध्याय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS
YouTube Drishti IAS
drishtiias
drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 8750187501, 011-47532596